महादेवी वर्मा की कविता

स्त्रीवादी दृष्टि से अध्ययन

रोहिणी अग्रवाल

महादेवी वर्मा की कविता: स्त्रीवादी दृष्टि से अध्ययन

रोहिणी अग्रवाल

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: फ़रवरी, 2025

© रोहिणी अग्रवाल

‘बांधती निर्बंध को मैं, बंदिनी निज बेड़ियां गिन’

(स्त्री की संघर्ष-यात्रा के कूलों में बहती महादेवी वर्मा की कविता)

महादेवी वर्मा की कविताओं को पढ़ना स्त्री-मन की भीतरी अमूर्त परतों को धीरे-धीरे एक सघन संकोच के साथ आकार लेते देखना है. वे शब्दों में गुंथी अंतस् की अभिव्यक्तियां नहीं, तूलिका की धूसर तरलता के साथ सतह पर फैलती चलती फैसलाकुन व्याकुलताएं हैं. व्याकुलताएं जिनमें सामाजिक मानदंडों, नैतिक वर्जनाओं और पारिवारिक प्रतिबद्धताओं से परे अपने को निखूट इंसान के रूप में जानने की आकांक्षाएं हैं. जाहिर है आत्म-पड़ताल, आत्म-संघर्ष और आत्मोपलब्धि की यह पूरी प्रक्रिया एकाकी और आंतरिक भर नहीं है. एक सीमा के बाद यह अपने तलघर से निकलकर पूरे समाज और विश्व-मानव का मुआयना करते हुए संस्कृतियों और सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वीकृत ढांचों को प्रश्नांकित करती है, और फिर अपने बुनियादी मानवीय अधिकारों को पाने के संघर्ष में तब्दील हो जाती है. महादेवी वर्मा एब्स्ट्रेक्ट शैली की रचयिता हैं. शब्दों के भीतर कितनी ही कूट अभिव्यक्तियों को पिरोते हुए, स्थूल घटनाओं-प्रसंगों से परहेज करते हुए प्रतीकों और रूढ़ बिंबो में मनमाने अर्थों का प्रक्षेपण करते हुए जब वे अपनी सांसों के आरोह-अवरोह को कविता में पिरोती हैं, तब एक ज़िंदा समाज के भीतर मुर्दा बना दी गई आधी दुनिया के

जमे आंसू यकबक सागर का खारापन बन उमड़ आते हैं. महादेवी वर्मा को जानने और जीने के लिए स्त्री-संवेदी मन पाना पहली शर्त है - ऐसा स्त्री-संवेदी मन जो जड़ों से कट कर पुन: सूखती जड़ों (आकांक्षाओं) के बावजूद हरियाने (पारिवारिक अर्हताओं के दबाव का सामना) का हुनर जानता है; परिवेश को स्नेह, संवेदना, साज-संभाल की तरलता देकर खुद आजीवन अतृप्त-तृषित बना रहता है.

महादेवी वर्मा कालक्रम की दृष्टि से छायावाद की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं और छायावाद की बुनियादी विशेषताओं को अंतर्भूत कर प्राकृतिक उपादानों के जरिए मौन के भीतर छिपी पुकारों को सुनती भी हैं, लेकिन इन पुकारों में अपने वजूद को विस्मृत कर किसी अदीखती अलौकिक सत्ता में लय हो जाने की आकांक्षा नहीं है. रहस्यवाद की कुहेलिकाएं उनके यहां भी झीना पर्दा डाल अनगिन अर्थव्यंजनाओं की सृष्टि करती हैं जिन्हें आलोचक और पाठक अपनी-अपनी मनोवृत्ति, दृष्टि और संवेदन के सहारे गूंथते-बुनते रहे हैं. लेकिन एक बात तय है कि कबीर आदि रहस्यवादियों की तरह उन्हें असीम अलौकिक परमसत्ता का साक्षात्कार/भेंट करने के लिए सायास अपने अहं पर स्त्री का अवगुंठन नहीं डालना पड़ता. 'स्त्री जैसा होने' और 'निखालिस स्त्री होने' की प्रतीति करना - ये दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियां हैं. पहली स्थिति में जहां शास्त्र-समाज-परिवार के संदर्भ में अपनी वैयक्तिकता को परखने का स्पेस है, वहीं दूसरी स्थिति में शास्त्र-समाज-परिवार द्वारा आरोपित व्यवस्था और छवियों को जीने और उन्हीं में

अपने अस्तित्व की सार्थकता समझने का सांस्कृतिक प्रशिक्षण है. पहली स्थिति जहां द्वंद्व और संघर्ष की सकर्मकता के सहारे अपने को पुनराविष्कृत करने की सतत और ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया है, वहीं दूसरी स्थिति यथास्थितिवाद के पोषण और महिमामंडन की निष्क्रियता का उत्पाद है. इसलिए आश्चर्य नहीं कि सामाजिक पाखंडों का उद्घाटन करती कबीर की विद्रोही वाणी परमसत्ता की मान्यता के सवाल पर किसी एक पंथ के आलोक में दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने का उपक्रम बन जाती है; और महादेवी वर्मा की कविता असीम की अलौकिक रहस्यात्मकता के ताने-बाने में बुनी एक तार स्निग्धता-सम्मोहन की देख पाती हैं, तो दूसरी तार उसकी निरंकुशता के कारण आहत 'ससीम' के मूक क्रंदन की सुन पाती है. महादेवी वर्मा के यहां रहस्यवाद परमसत्ता में लय हो जाने की अपेक्षा अपनी 'लघुता' को उसके तमाम संदर्भों-आयामों के साथ देख-गुनकर 'ससीम' में 'असम' की संभावनाओं को विकसित करने की साधना बन जाता है. अलबत्ता 'विसर्जन' की महत्ता को वे भी स्वीकारती हैं, लेकिन विसर्जन असीम संभावनाओं के उत्प्रेरक व्यक्तित्व का नहीं, संकीर्ण स्वार्थपरता और संकुचित मानसिकता का हो जो शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ (आभूषण आदि भौतिक वस्तुएं) की भांति मस्तिष्क को बोझिल (बंधनयुक्त) ही बनाता है - ''मानव को मानव की तुला पर गुरु होने के लिए स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने

दीर्घकाल के अनुभव के लंबे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है.” (यामा की भूमिका से)